B

कालिदासः मैंने बहुत बार अपने सम्बन्ध में सोचा है मल्लिका, और हर बार इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि अम्बिका ठीक कहती थी।

(बाँहें पीछे की ओर पफैल जाती हैं और आँखें छत की ओर उठ जाती हैं। **)**

मैं यहाँ से क्यों नहीं जाना चाहता था? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह आशंका थी कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा...और यह आशंका निराधर नहीं थी।

(आँखें मल्लिका की ओर झुक आती हैं।**)**

तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन सँभालने जा रहा हूँ? तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा। परन्तु मुझे इसमें कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। सम्भवतः उसमें कहीं उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब–तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा उपहास उड़ाया था।

(होंठ काटकर उठ पड़ता है और झरोखे के पास चला जाता है।**)**

परन्तु मैं यह भी जानता था कि मैं सुखी नहीं हो सकता। मैंने बार–बार अपने को विश्वास दिलाना चाहा कि कमी उस वातावरण में नहीं मुझमे है। मैं अपने को बदल लूँ, तो सुखी हो सकता हूँ। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। न तो मैं बदल सका, जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रतिलिपियाँ देश–भर में पहुँच गयीं, परन्तु मैं सुखी नहीं हुआ। किसी और के लिए वह वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था, मेरे लिए नहीं था। एक राज्यध्किारी का कार्यक्षेत्रा मेरे कार्यक्षेत्रा से भिन्न था। मुझे बार–बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविध के मोह में पड़कर उस क्षेत्रा में अनध्किार प्रवेश किया है, और जिस विशाल में मुझे रहना चाहिए था उससे दूर हट आया हूँ। जब भी मेरी आँखें दूर तक पफैली क्षितीज–रेखा पर पड़तीं, तभी यह अनुभूति मुझे सालती कि मैं उस विशाल से दूर हट आया हूँ।

पात्र – कालिदास
नाटक – आषाढ़ का एक दिन
नाटककार – मोहन राकेश

मुहम्मदःअगर तदबीर इतनी सरल होती तो अब तक किस्मत–आजमाई कर लेता। मैंने खुद कई मरतबा अपने–आपसे यह सवाल किया था कि तवारीख किसकी है? क्या मेरी हो सकती है? और क्या उस तवारीख में मेरी हस्ती कभी कायम हो सकती है जहाँ हर लम्हा शिद्दत के साथ वहशी टकराहट हुआ करती है? ऐसे फ़ानी का कहाँ तक एतिबार किया हाए? आखिर इस बवाले–जाँ से कब निजात हासिल होगी? अन्दर–ही–अन्दर एक ख़्वाहिश उभरती है कि इस कशमश को तोड़कर हज पर रवाना हो जाऊँ। 'रुआब' के सामने अपनी ज़िन्दगी बिछा दूँ और रूहानी सुकून हासिल कर लूँ। मगर हकींक़ते–हाल निहायत संगीन है, बरनी! ल–इलाज बीमार शख़्स को मैदानों में खुले फेंक देने का मतलब है, नई बीमारियों को दावत देना। (आवज़ को ऊँचा करते हुए) बरनी, हज़ारों खूँखार गिद्ध सर पर मँडरा रहे हैं जिनकी ख़ूनी नज़रें मुझ पर जमी हुई हैं। मैं अपनी बदनसीब रिआया को किसके भरोसे छोड़ दूँ?

पात्र – मुहम्मद
नाटक – तुगलक
नाटककार – गिरीश कारनाड
अनुवाद – बी.वी. कारन्त

शकार : आचार्य तो आत्म–रक्षा के लिए आँखों से दूर हो गए। चेट को मैं अपने प्राशाद की ड्योढ़ी में शृंखला डालकर रख दूँगा। इशशे भेद बाहर नहीं निकलेगा। तो चलूँ। नहीं पहले इशे देख लूँ कि ठीक शे मर गई है या इशे फिर शे मारना होगा। (देखकर) ठीक शे मर गई है। इशे इश वश्त्र शे ढक देता हूँ। परंतु इश पर तो नाम लिखा है, कोई भी शभ्य व्यक्ति देखते ही पहचान लेगा। वायु ने यहाँ शूखे पत्ते इकट्ठे कर दिए हैं, इनशे इशे ढक देता हूँ। (तदनुसार कार्य करके सोचता हुआ) हाँ, ऐशे ही करना ठीक है। न्यायालय में जाकर अभियोग लिखवा देता हूँ कि शार्थवाह चारुदत्त ने वशंतशेना को मेरे जीर्ण पुष्पकरंडक उद्यान में लाकर धन के लिए उशकी हत्या कर दी है।

पवित्र नगरी में
पशुहत्या करने की तरह
इश नए छल की रचना करता हूँ।
तो अब चलूँ।

निकलते हुए सामने देखकर और भयभीत होकर।

अरे मरा! जिश मार्ग शे भी जाने लगता हूँ, उशी मार्ग शे यह दुष्ट भिक्षु गँदले पानी में भीगा चीवर लिये आता दिखाई दे जाता है। मैंने इशकी नाक में छेद करके इशे खदेड़ दिया था। यह मुझे देख लेगा, तो वैर निकालने के लिए शबशे कहता फिरेगा कि शकार ने ही वशंतशेना की हत्या की है। तो किधर शे जाऊँ? (देखकर) यहाँ दीवार आधी गिरी हुई है, इशे लाँघकर निकल जाता हूँ।

पात्र – शकार
नाटक – मृच्छकटिक
नाटककार – शूद्रक
रूपान्तरकार – मोहन राकेश